1952 Ancient origins of the Namokar Mantr (2 parts)

Jain Gazette 1952

दि० ११ दिसम्बर, १९५२] जैन गजट ५

अनादि-मूलमंत्र

[ले०—पं० हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री]

महान् एवं पवित्र आत्माओं को नमस्कार करने की परम्परा आजकल से नहीं, अनादि काल से चली आरही है। जैनधर्म में अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांच महान् आत्मा माने गये हैं। ये किसी व्यक्ति-विशेष के नाम नहीं, प्रत्युत आत्मिक गुणों के विकास से प्राप्त होने वाले महान् आध्यात्मिक मंगल पद हैं। जबसे संसार है, तभी से उससे मुक्ति पाने का मार्ग भी अविच्छिन्न - रूप से चला आरहा है। यतः संसार अनादि है, अतः उससे मुक्ति पाने का प्रयास करने वाले और मुक्ति-लाभ करने वाले महापुरुष भी अनादि काल से ही होते चले आ रहे हैं। शास्त्रीय भाषामें इन्हें परमेष्ठी कहते हैं। संसारी आत्मा अनादि काल से आठ प्रकार के द्रव्य - कर्म बन्धनों से बद्ध है, और उनके निमित्त से उत्पन्न होने वाले अज्ञान, राग, द्वेष, मोह आदि भावकर्मों से प्रेरित होकर प्रतिक्षण नवीन-नवीन कर्मों का संचय करता हुआ परिभ्रमण करता आ रहा है। जब इसे किसी सुगुरु के उपदेश द्वारा स्व-बोध प्राप्त होता है, तब वह संसार-परिभ्रमण का कारण राग-द्वेष को जानकर उसे छोड़ने और आत्म-स्वरूप के पाने के लिए अग्रसर होता है और पर-वस्तुओं में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना को दूर कर, बाह्य प्रवृत्तियों को रोककर रातदिन मन वचन काय-की एकाग्रता के साथ आत्म-साधना करता है, इस साधना करने वाले व्यक्तियों को ही शास्त्रों की परिभाषा में 'साधु परमेष्ठी' कहा गया है।

जब यह साधु अपनी साधना के द्वारा साधु के लिए आवश्यक कर्त्तव्यों में निष्णात हो जाता है, रात-दिन के शास्त्राभ्यास के द्वारा विशिष्ट ज्ञानी बन जाता है और संसार-दुःख-निमग्न मानवों को उपदेश देकर और आत्म साधना में प्रवृत्त नवीन साधुओं को शास्त्र - अध्ययन कराने का अधिकारी बन जाता है, तब उसे उपाध्याय, अध्यापक या पाठक नामों से पुकारने लगते हैं। शास्त्रीय, भाषा में इन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

जब वही साधु विद्या, वय और आचरण में साधुओं के मध्य सर्वश्रेष्ठ गिना जाने लगता है, और स्वयं उसका गुरु अपना उत्तरा-धिकार उसे सौंपता है, या गुरु के अभाव में साधुसंघ उसे अपना शिक्षा और दीक्षा देने का अधिकारी घोषित कर देता है, तब वे आचार्य-परमेष्ठी कहलाने लगते हैं।

जब वे ही महापुरुष अपनी आत्म-साधना उग्र-तपस्या और गंभीर-अध्ययन के द्वारा उत्तरोत्तर आत्मशुद्धि करते हुए ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिया-कर्मों का नाश कर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को प्राप्त कर वीतराग, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाते हैं, और जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त कर लेते हैं तब अपनी दिव्य-वाणी के द्वारा संसार के उद्धार के लिए प्रवृत्त होते हैं, तब उन्हें अरहन्त परमेष्ठी कहते हैं, इन्हें ही सारा साधु संघ अपने मोक्षमार्ग का नेता मानता है और इस नेतृत्व गुण के कारण ही ये पांचों परमेष्ठियों में सर्वप्रथम नमस्कार के योग्य माने गये हैं।

जब उन अरहन्त परमात्मा का जीवन अल्प रहता है, तब बाहरी उपदेश, विहार आदि सर्व क्रियाओं को रोककर अपनी साधना के द्वारा शेष बचे हुए वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म को भी नष्ट कर क्षायिक सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों से युक्त होकर मुक्त हो जाते हैं अर्थात् शिव पद प्राप्त कर लेते हैं, तब उन्हें सिद्धपरमेष्ठी कहते हैं।

इस प्रकार एक साधारण आत्मा से परमात्मा बनने के लिए ये पांच पद माने गये हैं। उक्त पदों पर अवस्थित महान् आत्माओं को परमेष्ठी कहते हैं। ये पंच परमेष्ठी अनादि काल से होते आ रहे हैं। जिस मंत्र में उन पांचों परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है, उसे जैन लोग अनादि मूलमंत्र,नमस्कारमंत्र या मंत्राधिराज कहते हैं, क्योंकि यह दृष्टिवादपूर्व में वर्णन किये गये सर्व मन्त्रों का राजा है, और उन मन्त्रों का मूल भी है। वह अनादि मूल-मंत्र इस प्रकार है:—

णमो अरिहंताणं णमोसिद्धाणं णमो आइरीयाणं
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

सूत्रार्थ—अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोकवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार हो ॥१॥

विशेषार्थ—इस नमस्कार मंत्र के प्रथम पद में अरिहंताणं और अरहंताणं, ये दोनों पाठ मिलते हैं। प्रथम पाठ के अनुसार 'अरिहंत' इस प्राकृत पद के संस्कृत में दो रूप होते हैं—अरिहा और अर्हत्। द्वितीय पाठ के अनुसार 'अरहंत' इस प्राकृत पद का संस्कृत रूप 'अरहा' होता है। इस प्रकार अरिहा, अरहा और अर्हत् इन तीनों शब्दों के अर्थ पर यहां क्रमशः विचार करते हैं:—

अरि नाम शत्रु का है। यद्यपि जीव के गुणों को सभी कर्म घातते हैं, किन्तु उन सब में प्रधान मोहकर्म है, उसके नष्ट हो जाने पर शेष कर्मों का विनाश अवश्यम्भावी है। अतएव जो मोहरूप कर्म-शत्रु का हनन करे उसे अरिहा या अरिहंत कहते हैं। अथवा अरि नाम मोह का है। रज नाम ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म का है। जैसे रज अर्थात् धूलि आंखों में चली जाय, तो कोई बाह्य वस्तु नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मरूप रज से पूरित या व्याप्त आत्मा भी स्व और पर को देखने और जानने में असमर्थ रहता है, अतएव उक्त दोनों कर्मों की 'रज' संज्ञा है। रहस्य नाम अन्तराय कर्म का है। इस प्रकार 'अरि, रज और रहस्य' इन तीनों पदों के आदि अक्षरों को लेकर 'अ र र' हुआ। समानता के कारण एक प्रकार का लोप हो जाने से 'अर' अवशिष्ट रहता है। अथवा 'र' से रज और रहस्य इन दोनों का ही अर्थ ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार 'अर' अर्थात् चार घाति कर्मों के हनन करने वाले 'अरहन्त' कहलाते हैं।

'अर्ह' धातु पूजार्थक है, उससे अर्हतीति अर्हन्' इस प्रकार अर्हत् शब्द की सिद्धि होती है। सकल-परमात्मा तीर्थङ्कर अर्हद्देव ने गर्भ जन्म, दीक्षा और ज्ञानकल्याणक के समय इन्द्रादिक के द्वारा महान् पूजा-सत्कार प्राप्त किया है और आगे निर्वाणकल्याण-सम्बन्धी उत्सव प्राप्त करेंगे, इस प्रकार सातिशय पूजा के योग्य होने से जिनेन्द्रदेव की 'अर्हन्' ऐसी सार्थक संज्ञा है।

कहीं कहीं 'अरिहंत, अरहंत' के समान 'अरहन्त' पाठ भी मिलता है। संस्कृत में 'रुह' धातु अंकुरोत्पत्ति के अर्थ में आती है सो जिनका अब आगे को भवरूपी अंकुर नहीं उगने वाला है, उन्हें 'अरुहन्त' कहते हैं। अरहन्त के चार घातिया कर्म तो नष्ट हो ही चुके हैं और शेष चार अघातिया कर्म नियम से उसी भव में नष्ट होंगे। इस प्रकार जब कर्मरूपी बीज ही नष्ट होगया, तब संसार रूपी अंकुर कैसे उग सकता है? नहीं उग सकता। इस प्रकार 'अरहंत' नाम भी सार्थक जानना चाहिए।

अथवा, 'अरहंत' इस प्राकृत पद का 'अरथान्त' ऐसा भी संस्कृत रूप होता है जिस के अनुसार यह अर्थ निकलता है कि जिनके सकल परिग्रह का उपलक्षणभूत रथ, और जरा, मरणादिरूप अन्त अर्थात् विनाश विद्यमान नहीं है, अर्थात् जो परिग्रहादि से रहित होने के कारण वीतराग और जन्म, जरा, मरणादि से रहित हो चुके हैं, उन्हें अरहंत कहते हैं।

अथवा 'अरहंत' पद का 'अरहोऽन्तरः भी एक संस्कृत रूप बनता है, जिसका यह अर्थ होता है कि 'अ' अर्थात् अविद्यमान है 'रहः अर्थात् एकान्त रूप प्रदेश या स्थान और अन्त अर्थात् गिरि गुहा आदि का मध्य भाग जिनके उन्हें अरहंत कहते हैं। केवल ज्ञान प्राप्त होजाने पर अरहंतके त्रिलोक के त्रिकाल-वर्ती पदार्थों में जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता है। इस प्रकार अरिहंत नाम से वीतरागता, अरहोऽन्तर नाम से सर्वज्ञता, और अर्हन् नाम से हितोपदेशकता सूचित की गई है। इन तीनों गुणों से युक्त अरहंत परमात्मा ही सत्यार्थ आप्त हैं। —अपूर्ण

पावागढ़ सिद्धक्षेत्र—की सहायता प्राप्त करने के लिये मुनीम श्री लादूलाल जी आजकल भ्रमण कर रहे हैं उनके द्वारा दि० जैन समाज कलकत्ता से करीब १४५०) तथा बम्बईसे दि० जैन समाज से ४८)प्राप्त हुए। धन्यवाद! मुनीम जी आसाम की ओर गये हैं।

अनादि-मूलमंत्र

[ले०—श्री पं० होरालालजी सिद्धांत शास्त्री]

[गतांक से आगे]

कहने का सारांश यह है कि जिन्होंने मोह-रूपी वृक्ष को जला दिया है, जो त्रिलोकी अज्ञान रूपी समुद्र से उत्तीर्ण होगये हैं, जिन्होंने अपने समस्त विघ्नों के वर्ग को नष्ट कर दिया है, जो सर्व बाधाओंसे विनिर्गत हैं, अचल हैं, जिन्होंने मदन के प्रताप को दलित कर दिया है, जिन्होंने तीनों कालों को विषय करने-रूप तीन नेत्रों से सर्व पदार्थों के सार को प्रत्यक्ष कर लिया है, जिन्होंने राग, द्वेष, मोह रूप त्रिपुरासुर को सर्वथा भस्म कर दिया है, जो मुनियों के अधिपति हैं, जो रत्नत्रयरूप त्रिशूल को धारण करके मोहरूप अन्धकासुर के कबन्धवृन्द का हरण करने वाले हैं, जिन्होंने आत्म - स्वरूप को सिद्ध कर लिया है और जिन्होंने मिथ्यामत रूप दुनियों का अन्त कर दिया है। जिन्होंने अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुखवीर्य क्षायिक सम्यक्त्व, दान, लाभ, भोग, उपभोग आदि अनन्त गुणों के प्रगट हो जाने से यहीं मनुष्य लोक में ही सिद्धस्वरूप प्राप्त कर लिया है, जो स्फटिकमणि-महीधर के गर्भ से उदित होते हुए आदित्य बिम्ब के समान देदीप्यमान हैं, जो स्व-शरीर-प्रमाण होते हुए भी ज्ञान की अपेक्षा सर्व को जानने से विश्वव्यापी हैं, जो स्व-स्थित अशेष प्रमेयों के प्रत्यक्ष करने की अपेक्षा विश्वरूप हैं, जो अशेष आमय अर्थात् सर्व रोगों के दूर हो जाने से निरामय हैं, जो सर्व पापरूप अंजन-पुंज के अभाव हो जाने से निरंजन हैं, और जो दोषों की सर्वकला या अंशों से रहित होने के कारण निष्कल हैं, ऐसे अरिहंतों को नमस्कार हो।

णमो सिद्धाणं—जो ज्ञानावरणादि सर्व कर्मों के नष्ट कर देने से कृतकृत्य हैं, पौद्गलिक शरीर के अभाव से ज्ञान-शरीर हैं, अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन के प्राप्त करने से लोक और अलोक के जानने और देखने वाले हैं, जिस मनुष्य-शरीर से मोक्ष प्राप्त करते हैं उसी आकार को धारण करने से जो पुरुषाकार हैं, तथा लोकके शिखर पर जो सिद्ध शिला है उस पर अवस्थित होकर संसार रूप नाटक को देखते हुए निजानन्द रूप रस में लवलीन हैं, सर्व दुःखों से रहित हैं, सुख रूप सागर में निमग्न हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, व्यवहार दृष्टि से सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से युक्त हैं, और निश्चय दृष्टि से अनन्त गुणों से युक्त हैं, अनवद्य एवं निर्दोष हैं, अपने सर्व प्रदेश रूप अवयवों से समस्त वस्तु-जात के ज्ञाता और दृष्टा हैं, जो वज्रशिलाके स्तंभ पर निर्मित व उत्कीर्ण की गई प्रतिमा के समान अमेय अवर्णनीय आकार से युक्त हैं, जो सर्व अवयवों की अपेक्षा मनुष्याकार होने पर भी गुणोंसे पुरुष के समान नहीं हैं, अर्थात् गुणातीत या अनन्त गुणों के धारक हैं, और जो सर्व इन्द्रियों के विषय विषयों के एक देश या प्रति प्रदेश से जानते हैं, ऐसे सिद्धों को नमस्कार हो।

'णमो आइरियाणं' जो दर्शन ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पांच प्रकारके आचारों का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओं से आचरण कराते हैं, जो चौदह पूर्वरूप विद्याधाम के पारगत हैं, आचारांग आदि ग्यारह अंगों के धारक हैं, अथवा केवल आचारांग के धारक होते हुए भी तात्कालिक स्वसमय और पर-समयके पारगामी हैं, मेरुके समान निश्चल हैं, पृथिवी के समान सहिष्णु या सहन शील हैं, जिन्होंने अपने अन्तरंग मल एवं विकार को समुद्रके समान बाहर फेंक दिया है, जो इह लोकभय, परलोक भय आदि सातों प्रकार के भयों से विमुक्त हैं, प्रवचन रूप समुद्र के अगाध जल के मध्यमें स्नान करने से अर्थात् परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो शुद्ध षडावश्यकों का पालन करते हैं, जो सुमेरु के सदृश निष्कम्प हैं, शूर वीर हैं, सिंहके समान निर्भय हैं, साधुओं में श्रेष्ठ हैं, देश कुल और जातिसे शुद्ध हैं, सौम्य मूर्ति हैं, अन्तरंग और बहिरंग संग के भंग से उन्मुक्त हैं, गगन के समान निर्लेप हैं, जो संघ के संग्रह और निग्रह में अर्थात् शिक्षा और दीक्षा देने में कुशल हैं, जो सूत्र अर्थात् परमागमके अर्थ करने में निपुण हैं जिनका यश और प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है, जो धारण (आचरण) धारण (निषेध) और साधन (व्रत-रक्षण) की क्रियाओं में नित्य उद्यमी हैं ऐसे आचार्यों को नमस्कार हो।

'णमो उवज्झायाणं' जो चौदह विद्यास्थानों के व्याख्याता हैं, अथवा तात्कालिक प्रवचन के व्याख्याता होते हैं, संग्रह और निग्रह को छोड़कर आचार्य के अशेष गुणों से समन्वित होते हैं, जो चौदह पूर्वरूपी समुद्र में अवगाहन करके स्वयं मोक्षमार्ग पर आरूढ हैं और अन्य मोक्ष के इच्छुक मुनि जनों को रत्नत्रयरूप धर्म का उपदेश देते हैं, जो साधुओं के अधीश हैं, यतिवरों में श्रेष्ठ हैं, स्व-समय और पर-समय के ज्ञाता, वाग्मी, और शासन के महान प्रभावक नेता होते हैं, मिथ्यामतों का खंडन कर सन्मार्ग के प्रचार करने में सदा निरत रहते हैं, जिनके प्रसाद से घोर संसार रूप भयंकर अटवी में भ्रमण करते और विषय-कषायरूप व्याघ्र के द्वारा विदारे जाते हुए भूले पथियों को सुपथ का दर्शन होता है, ऐसे साधुओं में श्रेष्ठ उपाध्यायों को नमस्कार हो।

'णमो लोए सव्वसाहूणं' जो अनन्त ज्ञानादिरूप शुद्ध आत्मस्वरूप की निरन्तर साधना करते हैं, पांच महाव्रतों के धारक और तीन गुप्तियों से गुप्त (सुरक्षित) हैं, अठारह हजार शील के भेदों का, और चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन करते हैं, जो सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, वृषभ-बैल के समान भद्र-परिणामी, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, पवन के समान निःसंग सर्वत्र-विहारी, सूर्य के समान तेजस्वी, सागर के समान गंभीर, मन्दराचल के समान अडोल और अकम्प, चन्द्र के समान शान्तिदायक, मणि के समान प्रभापुंज से युक्त, पृथ्वी के समान सहनशील, सर्प के समान अनियतवसतिवासी, आकाश के समान निर्लेप या निरालम्बी, शारद-सलिल के समान शुद्ध-हृदय, कमल पत्र के समान निरुपलेप, कछुए के समान गुप्तेन्द्रिय, पक्षी के समान सर्वतो विहारी और उन्मुक्त, गेंडा के समान एक-जात, भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त, जात्य कांचन के समान जातरूप, रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग के साधक और सदा परम पद का अन्वेषण करने वाले, ऐसे मनुष्य लोकवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

इस मंत्रके विषयमें महर्षियोंने कहा है कि—

एसो पंच णमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

अर्थात्—यह पंचनमस्कार मंत्र सर्व पापों का सर्वथा नाश करने वाला है और सब मंगलों में प्रथम अर्थात् श्रेष्ठ मंगल है। इसका कारण यह है कि महान्, पवित्र और वीतराग आत्माओं के प्रति नमस्कार करने से आत्मा में श्रद्धा की अभिव्यक्ति होती है, श्रद्धा जागृत होने से मनका अन्धकार दूर होता है, संशय का नाश होता और आत्म - शक्ति का विकास होता है। आत्मशक्ति का विकास होने से सर्व दुःखों का नाश स्वतः सिद्ध है।

इस मंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है। यहां तक कि जिस जैन धर्म में तीर्थंकरों को सबसे महान पद प्राप्त है, जो धर्म के महान प्रचारक माने जाते हैं, उन तक का नाम इस मंत्र में नहीं लिया गया है हालांकि अरिहंतके रूपमें उनका समावेश है ही अनादि काल से अगणित तीर्थंकर हो चुके हैं, और आगे अनन्त होंगे तब किस किस तीर्थंकर का नाम मंत्र में जोड़ा जाता। इस लिए सदा से इस प्रकार के व्यक्तिगत नामों को इस मूलमंत्र में स्थान नहीं मिल सका। यहां तक कि समष्टिरूप से **'णमो तित्थयराणं'** के रूपमें भी 'तीर्थंकर' इस सामान्य पद का भी प्रयोग इस मंत्र में नहीं किया गया है और यही बात उसके अनादित्व का समर्थन करती है। इस प्रकार के अनादि मूलमंत्र के लिए नमस्कार है।

—०—

जैन कालेज में भटनागर जी

९ दिसम्बर को महावीर दि० जैन कालेज में सर शान्तिस्वरूप भटनागर पधारे। आपका कालेज की ओर से स्वागत किया गया। सर शान्तिस्वरूप जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में अपने देश की खाद्य स्थिति पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि विज्ञान इस समस्या को हल करने में बहुत बड़ा सहायक हो सकता है। मैं इस कालेज के विद्यार्थियोंसे आशा करता हूं कि वे विज्ञान को पढ़कर इसका उपयोग देश की उन्नति में करें। इसके बाद जैन मेले के अवसर पर बाहर से आये हुये जैन विद्वान पं० सुखलाल जी सागर, पं० कैलाशचन्द जी बनारस, पं० लालबहादुर जी इन्दौर के सम्मान हुए।

1954 Ancient Origins of the Panch Namokar Mantra

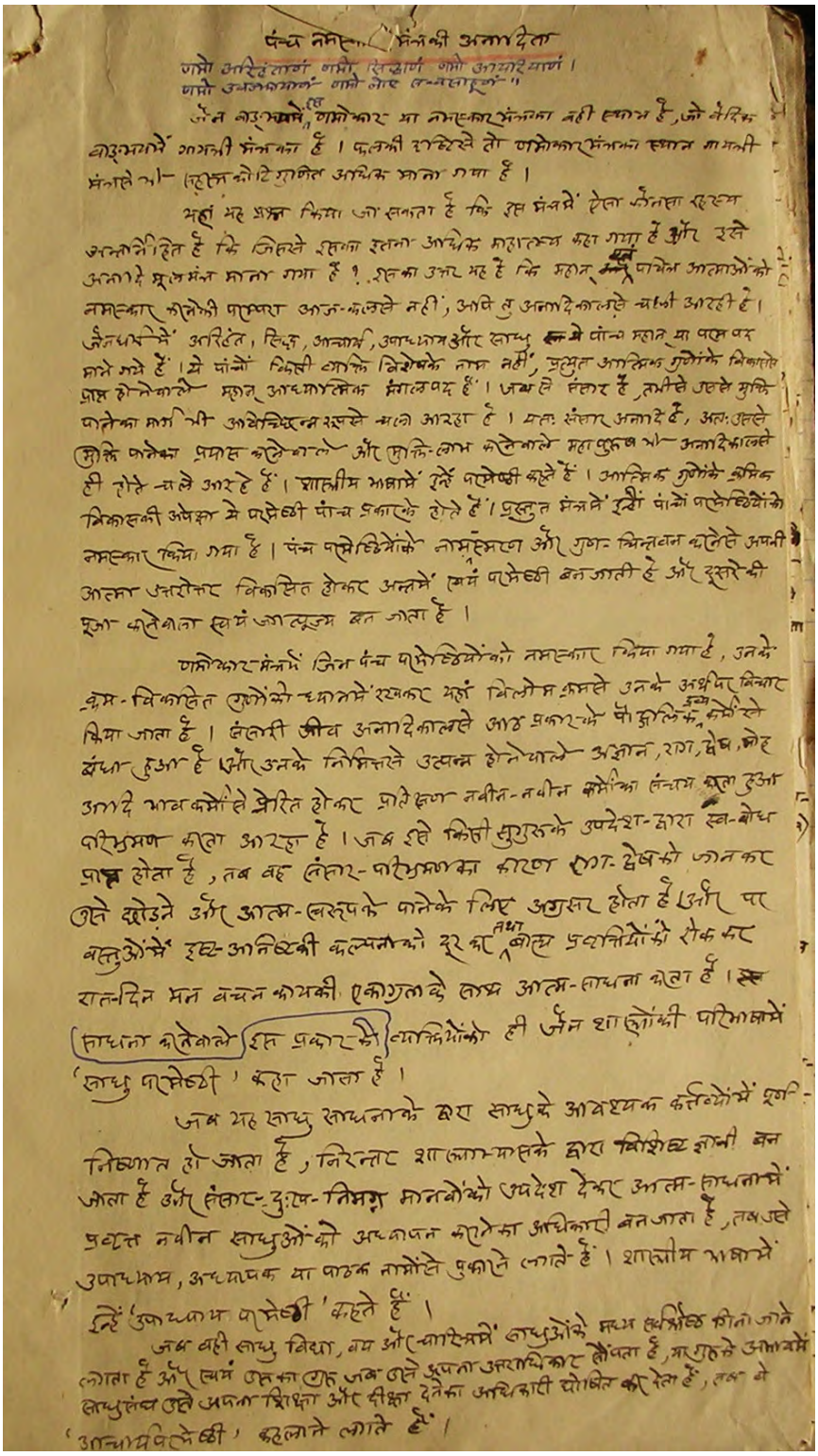

पंच नमोक्कार मंत्रकी अनादिता

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

जैन शास्त्रोंमें णमोकार या नमस्कार मंत्रका वही स्थान है, जो वैदिक शास्त्रोंमें गायत्री मंत्रका है । फलकी दृष्टिसे तो णमोकार मंत्रका स्थान गायत्री मंत्रसे भी कहीं कोटि गुणित अधिक माना गया है ।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि इस मंत्रमें ऐसा कौनसा रहस्य अन्तर्निहित है कि जिससे इसका इतना अधिक महात्म्य कहा गया है और इसे अनादि मूलमंत्र माना गया है ? इसका उत्तर यह है कि महान् पवित्र आत्माओंको नमस्कार करनेकी परम्परा आज-कलसे नहीं, अपितु वह अनादिकालसे चली आरही है। जैनधर्ममें अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांच महान् या परम पद माने गये हैं । ये पांचों किसी व्यक्ति विशेषके नाम नहीं, प्रत्युत आत्मिक गुणोंके विकाससे प्राप्त होनेवाले महान् आध्यात्मिक मंगलपद हैं । जबसे संसार है, तभीसे उससे मुक्ति पानेका क्रम भी अविच्छिन्न रूपसे चला आरहा है । अतः संसार अनादि है, अतः उससे मुक्ति पानेका प्रयास करनेवाले और मुक्ति-लाभ करनेवाले महापुरुष भी अनादिकालसे ही होते चले आरहे हैं । शास्त्रीय भाषामें इन्हें परमेष्ठी कहते हैं । आत्मिक गुणोंके क्रमिक विकासकी अपेक्षा ये परमेष्ठी पांच प्रकारके होते हैं । प्रस्तुत मंत्रमें इन्हीं पांचों परमेष्ठियोंको नमस्कार किया गया है । पंच परमेष्ठियोंके नामोच्चारण और गुण-चिन्तवन करनेसे अपनी आत्मा उत्तरोत्तर विकसित होकर अन्तमें स्वयं परमेष्ठी बन जाती है और दूसरेकी पूजा करनेवाला स्वयं जगत्पूज्य बन जाता है ।

णमोकार मंत्रमें जिन पंच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया गया है, उनके क्रम-विकसित गुणोंको क्रमानुसार रखकर यहां विशेष रूपसे उनके अर्थका विचार किया जाता है । इसमें जीव अनादिकालसे आठ प्रकारके घाती-अघाती कर्मोंसे बंधा हुआ है और उनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले अज्ञान, राग, द्वेष, मोह आदि भावकर्मोंसे प्रेरित होकर प्रतिक्षण नवीन-नवीन कर्मोंका संचय करता हुआ परिभ्रमण करता आरहा है । जब इसे किसी सुगुरुके उपदेश-द्वारा स्व-बोध प्राप्त होता है, तब वह संसार-परिभ्रमणका कारण राग-द्वेषको जानकर उसे छोड़ने और आत्म-स्वरूपके पानेके लिए अग्रसर होता है और पर वस्तुओंमें इष्ट-अनिष्टकी कल्पनाको दूर कर तथा बाह्य प्रवृत्तियोंको रोक कर रात-दिन मन वचन कायकी एकाग्रताके साथ आत्म-साधना करता है । इस साधना करनेवाले इस प्रकारकी व्यक्तियोंको ही जैन शास्त्रोंकी परिभाषामें 'साधु परमेष्ठी' कहा जाता है ।

जब यह साधु साधनाके द्वारा साधुके आवश्यक कर्तव्योंमें पूर्ण निष्णात हो जाता है, निरन्तर शास्त्राभ्यासके द्वारा विशेष ज्ञानी बन जाता है और संसार-दुःख-निमग्न प्राणियोंको उपदेश देकर आत्म-साधनामें प्रवृत्त नवीन साधुओंको अध्ययन करानेका अधिकारी बन जाता है, तब उसे उपाध्याय, अध्यापक या पाठक नामोंसे पुकारने लगते हैं । शास्त्रीय भाषामें इन्हें 'उपाध्याय परमेष्ठी' कहते हैं ।

जब यही साधु विद्या, बल और चारित्रमें साधुओंके मध्य विशिष्ट कोटिको पा जाते लेता है और स्वयं उसका गुरु जब उसे अपना उत्तराधिकार सौंपता है, या गुरुके आदेशसे साधुसंघ उसे अपना शिक्षा और दीक्षा देनेका अधिकारी घोषित कर देता है, तब वे 'आचार्य परमेष्ठी' कहलाने लगते हैं ।

जब वे ही महापुरुष अपनी आत्म-साधना, उग्र तपस्या और शक्तिके अचिन्त्य द्वारा उत्तरोत्तर आत्मशुद्धि करते हुए ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिया कर्मोंका नाश कर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तसुख और अनन्त वीर्यको प्राप्तकर वीतराग, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाते हैं और जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, तब अपनी दिव्य वाणीके द्वारा संसारके उद्धारके लिए प्रवृत्त होते हैं, तब उन्हें 'अरिहन्त परमेष्ठी' कहते हैं। इन्हें ही समस्त साधुसंघ अपने मोक्षमार्ग का नेता मानता है और इस नेतृत्व गुणके कारण ही वे पांचों परमेष्ठियोंमें सर्व प्रथम नमस्कारके योग्य माने गये हैं।

जब इन अरिहन्त परमात्माका जीवन अल्प शेष रहता है तब वे उपदेश, विहार आदि सर्व बाह्य क्रियाओंको रोककर अपनी साधनाके द्वारा शेष बचे हुए वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मको भी नष्ट कर मुक्त हो जाते हैं। उस समय उनमें सभी आत्मीय अनन्त गुण प्रकट हो जाते हैं। और वे लोकके शिखर पर पहुंचकर शिवपद प्राप्त कर लेते हैं। तब उन्हें सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।

इस प्रकार एक साधारण आत्मासे परमात्मा बननेके लिए ये पांच परम पद माने गये हैं। उक्त पांचों परम पदों पर अवस्थित महान आत्माओंको पर-मेष्ठी कहते हैं। ये पांचों परमेष्ठी अनादिकालसे होते आ रहे हैं, अतएव इनको किया गया नमस्कार भी अनादि मूल मंत्र कहलाता है। अब यहांपर इस मंत्रके प्रत्येक पदपर विशेष विचार किया जाता है —

'णमो अरिहंताणं' अरिहन्तोंको नमस्कार हो। इस प्रथम पदके शब्दों-में 'अरिहंताणं' और 'अरुहंताणं', ये दोनों पाठ मिलते हैं। प्रथम पाठके अनुसार 'अरिहंत' इस प्राकृत पदके संस्कृतमें दो रूप होते हैं-अरिहा और अरिहन्त। द्वितीय पाठके अनुसार 'अरहंत' इस प्राकृत पदका संस्कृत रूप 'अरहा' होता है। इस प्रकार अरिहा, अरहा और अरिहन्त, इन तीनोंके शब्दोंके अर्थपर यहां क्रमशः विचार करते हैं।

अरि नाम शत्रुका है। यद्यपि जीवके गुणोंको सभी कर्म घातते हैं, तथापि उन सबमें प्रधान मोहनीय कर्म है। उसके नष्ट हो जानेपर शेष कर्मोंका विनाश अवश्यम्भावी है। अतएव जो मोहरूप कर्मशत्रुका हनन करते उसे अरिहा या अरिहंत कहते हैं। अथवा अरि नाम मोहका है। रज नाम ज्ञाना-वरण और दर्शनावरण कर्मका है। जैसे रज अर्थात् धूलि आंखोंमें पड़ी जाय, तो कोई बाह्य वस्तु नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मरूप रजसे पूरित या व्याप्त आत्मा भी स्व और परको देखने और जाननेमें असमर्थ रहता है; अतएव उक्त दोनों कर्मोंकी रज संज्ञा है। रहस्य नाम अन्तरायकर्मका है। इस प्रकार 'अरि, रज और रहस्य' इन तीनों पदोंके आदि अक्षरोंको लेकर 'अरर' हुआ। समानताके कारण एक रकारका लोप हो जानेसे 'अर' अवशिष्ट रहता है। अथवा 'र' से रज और रहस्य इन दोनोंका ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार 'अर' अर्थात् चार घातिया कर्मोंके हनन करनेवाले 'अरहन्त' कहलाते हैं।

'अर्ह' धातु पूजार्थक है, उससे 'अर्हतीति अर्हन्' इस प्रकारसे 'अर्हत्' शब्दकी सिद्धि होती है। सकल परमात्मा तीर्थंकर अर्हंत केवली जन्म, दीक्षा और ज्ञानकल्याणकके समय इन्द्रादि देवोंके द्वारा महान् पूजा-सत्कार प्राप्त किया है और आगे निर्वाणकल्याणक-सम्बन्धी पूजा प्राप्त करेंगे, इस प्रकार सातिशय पूजाके योग्य होनेसे जिनेन्द्र देवकी 'अर्हत्' ऐसी संज्ञा सार्थक है।

कहीं कहीं 'अरिहंत और अरुहंत' के स्थान 'अरुहन्त' पाठ भी मिलता है। संस्कृतमें 'रुह' धातु अंकुरोत्पत्तिके अर्थमें आती है सो जिनका अब आगेको भवरूपी अंकुर नहीं उगानेवाला है, उन्हें 'अरुहन्त' कहते हैं। अरुहन्तने चार घातिया कर्म तो नष्ट हो ही चुके हैं और शेष चार अघातिया कर्म शुक्लध्यानसे उसी भवमें नष्ट होंगे। इस प्रकार जब कर्मरूपी बीज ही नष्ट हो गया, तब संसाररूपी अंकुर कैसे उग सकता है? नहीं उग सकता। इस प्रकार 'अरुहंत' नाम भी सार्थक जानना चाहिए।

अथवा 'अरुहंत' इस प्राकृत पदका 'अरथान्त' ऐसा भी संस्कृत रूप होता है। जिसके अनुसार यह अर्थ निकलता है कि जिनके सकल परिग्रहरूप उपलक्षण मूल रथ, और जरा-मरणादिरूप अन्त अर्थात् विनाश विद्यमान नहीं है, अर्थात् जो परिग्रहादिसे रहित होनेके कारण वीतराग और जन्म, जरा मरणादिसे रहित हो चुके हैं, उन्हें 'अरथान्त' या 'अरहंत' कहते हैं।

अथवा 'अरहंत' पदका 'अरहोऽन्तरः' भी एक संस्कृत रूप बनता है, जिसका यह अर्थ होता है कि 'अ' अर्थात् अविद्यमान है 'रहः' अर्थात् एकान्तरूप प्रदेश या स्थान और अन्तर अर्थात् गिरि-गुहादिका मध्य भाग जिनके, उन्हें 'अरहोऽन्तर' कहते हैं। केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर अरहंतके त्रिलोक त्रिकाल वर्ती पदार्थोंके जाननेके लिए किञ्चित् भी क्षेत्र नहीं रहता है।

इस प्रकार अरिहंत नामसे वीतरागता, अरहोऽन्तर नामसे सर्वज्ञता और अर्हन् नामसे हितोपदेशकता सूचित की गई है। इन तीन गुणोंसे युक्त अरहंत परमात्मा ही स्वस्वार्थी आप्त हैं। ऐसे अरिहन्तोंको ही अनादि मूलमंत्रके प्रथम पदमें नमस्कार किया गया है।

'णमो सिद्धाणं' जो ज्ञानावरणादि सर्व कर्मोंके नष्ट कर देनेसे कृतकृत्य हैं, पौद्गलिक शरीरके अभावसे ज्ञान-शरीरी हैं, अनन्तज्ञान और अनन्त दर्शनके प्राप्त करनेसे लोक-अलोकके जाने-देखनेवाले हैं, जिन मनुष्य-शरीरसे मोक्ष प्राप्त किया है, उसी आकारको धारण करनेसे जो पुरुषाकार हैं, तथा लोकके शिखर पर स्थित सिद्धशिलापर विराजमान होकर संसार रूपी नाटकको देखते हुए निजानन्दरूप रसमें लवलीन हैं, सर्व दुःखोंसे रहित हैं, सुखरूप सागरमें निमग्न हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, व्यवहार दृष्टिसे सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंसे युक्त हैं और निश्चय दृष्टिसे अनन्त गुणोंसे युक्त हैं, शुद्ध हैं, बुद्ध हैं, अनवद्य एवं निर्दोष हैं, अपने सर्वप्रदेशरूप अवयवोंसे समस्त वस्तुजातके ज्ञाता और दृष्टा हैं, अमूर्त चैतन्य चिपुंजके धारक हैं, जो आगे भी अनन्त कालतक इसी सहज शुद्ध रूपको धारण किये रहेंगे। इन्हें ही अन्य मतावलम्बियोंने निर्गुण परमेश्वर, परम ब्रह्म, सच्चिदानन्द, अकल, अजर, अमर आदि अनेकों नामोंसे पुकारा है। ~~[illegible]~~ दो ईश्वर लोक में [illegible] हृदय-कमलके भीतर ध्यान करते रहते हैं। ऐसे सिद्ध परमेष्ठीको अनादि मूल मंत्रके इस दूसरे पदमें नमस्कार किया गया है।

'णमो आयरियाणं', जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य, इन पांच प्रकार के आचारोंका स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओंसे आचरण कराते हैं, जो चौदह पूर्वरूप विद्यास्थानोंके पारगामी हैं, आचारांगादि ग्यारह अंगोंके धारक हैं, अथवा केवल आचारांगके धारक होते हुए भी तात्कालिक स्व-समय और पर-समयके ज्ञाता हैं, मेरुके समान निष्प्रकंप हैं, पृथिवीके समान सहनशील हैं, जिन्होंने अपने अन्तरंग मल एवं विकारको समुद्रके समान बाहर फेंक दिया है, जो इहलोक-भय, परलोकभय आदि सातों प्रकारके भयोंसे रहित हैं, प्रकाशस्वरूप समुद्रके अगाध जलके सदृश ज्ञान करते हैं अर्थात् पदार्थोंके परिपूर्ण आकार और अनुभवसे जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो शुद्ध रीतिसे छह आवश्यकोंका पालन करते हैं, सुमेरुके शृङ्ग-वीर हैं; सिंहके समान निर्भीक हैं; साधुओंमें श्रेष्ठ हैं; देश, कुल और जातिसे शुद्ध हैं, सौम्यमूर्ति हैं, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहसे उन्मुक्त हैं, गगनके समान निर्लेप हैं, जो संघके संग्रह और निग्रहमें कुशल हैं, पदार्थके अर्थ करनेमें निपुण हैं, जिनका यश और प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है, जो कारण (आचरण) कारण (निषेध) और साधन (ग्रहण-धारण) की क्रियाओंमें नित्य उद्यमी हैं, ऐसा आचार्योंका अनादिमूलमंत्रके इस तीसरे पदमें नमस्कार किया गया है।

'णमो उवज्झायाणं', जो चौदह पूर्वरूप विद्यास्थानोंके व्याख्याता हैं, अथवा तात्कालिक प्रवचनके व्याख्याता हैं, संग्रह और निग्रहको छोड़कर आचार्यकी सर्व गुणोंसे संयुक्त हैं, चौदह पूर्वरूप समुद्रमें अवगाहन करके स्वयं मोक्ष मार्गमें आरूढ हैं और मोक्षके इच्छुक अन्य मुनिजनोंको दृष्टान्तरूप चर्यका उपदेश देते हैं, जो साधुओंके अधीश हैं, प्रीतिभोजोंमें श्रेष्ठ हैं, स्व-समय और पर-समयके ज्ञाता हैं, वादी और शास्त्रार्थके महान् प्रभावक हैं, मिथ्यामतोंका खंडन करनेमें समर्थ हैं, प्रभावना करनेमें सदा निरत हैं, जिनके प्रसादसे घोर संसाररूपी भयानक अटवीमें परिभ्रमण करते और विषम-कषायरूप श्वापदोंके द्वारा विदारे जाते हुए भव्य पथिकोंको सुपथका प्रदर्शन प्राप्त होता है, ऐसे उपाध्यायोंको अनादि मूल-मंत्रके इस चौथे पदमें नमस्कार किया गया है।

'णमो लोए सव्व साहूणं', जो अपने अनन्तज्ञानादिरूप शुद्ध आत्मस्वरूप की नित्य साधना करते हैं, पांच महाव्रतोंके धारक हैं, तीन गुप्तियोंसे गुप्त (सुरक्षित) हैं, शीलके अठारह हजार भेदोंका और चौरासी लाख उत्तरगुणोंका पालन करते हैं, जो सिंहके समान पराक्रमी, गजके समान स्वाभिमानी, वृषभ (बैल) के समान भद्र परिणामी, मृगके समान सरल, पशुके समान निरीह (इच्छा-रहित) पवनके समान निःसंग सर्वत्र विहारी, सूर्यके समान तेजस्वी, सागरके समान गंभीर, मेरुके समान अडोल एवं अकम्प, चन्द्रके समान शान्ति दायक, मणिके समान प्रभायुक्त, पृथ्वीके समान सहिष्णु, सर्पके समान अनियत-निवासी, आकाशके समान निर्लेप, शारद सलिलके समान शुद्ध हृदय, कमलपत्रके समान निरुपलेप, कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय और पक्षीके समान सर्वत्र विहारी हैं, स्वसमयरूप मोक्षमार्गके साधक हैं, पद पद निर्वाणके अन्वेषक हैं, ऐसे अहर्निश आत्म साधना-तत्पर साधु (सर्वके हितैषी) साधुजनोंके अनादि मूलमंत्रके इस पांचवें पदमें नमस्कार किया गया है।

इस मंत्रकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें किसी व्यक्ति विशेषको नमस्कार नहीं किया गया है, यहांतक कि जिस जैन धर्ममें तीर्थंकरोंके सबसे अधिक महत्त्व माना है, जो धर्मके महान प्रचारक माने जाते हैं, उनतकका नाम इस मंत्रमें नहीं दिया गया है, केवल अरिहन्तके रूपमें उनका उल्लेख है ही। अनादिकालसे अनगिनत तीर्थंकर हो चुके हैं और आगे अनन्त होंगे, तब किस किस तीर्थंकरका नाम मंत्रमें जोड़ा जाता। इसलिए सर्वादि इस प्रकारके व्यक्तिगत नामोंको इस मूलमंत्रमें स्थान नहीं मिल सका। यही कारण है कि इसके रचयिता श्री पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्यने भी उनका निर्देश नाम इस मंत्रमें नहीं किया तथापि सबसे पहले 'णमो सिद्धायाणं', के रूपमें सिद्धोंको नमस्कार किया गया है और यही बात इस मंत्रके अनादित्वका समर्थन करती है।